



2026:AHC-LKO:7756-DB

प्रतिवेद्य

न्यायालय सं-11

इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ खंडपीठ

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या-307 वर्ष 2025

सुनील कुमार गुप्ता @ सुनील चैन ... याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोइन

माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीमती बबीता रानी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता : अविनाश सिंह विशेन, दिग्विजय सिंह, नदीम मुर्तजा, निखिल

मिश्रा, सुधांशु एस त्रिपाठी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता : ए.एस.जी.आई., डॉ. पूजा सिंह, शासकीय अधिवक्ता

(माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीमती बबीता रानी द्वारा पारित)

1. श्री नदीम मुर्तजा, अधिवक्ता श्री सुधांशु त्रिपाठी, अधिवक्ता और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री राघव बंसल, प्रतिपक्षी संख्या-1 के अधिवक्ता डॉ. पूजा सिंह और प्रतिपक्षी संख्या-2 से 4 की ओर से उपस्थित होने वाले श्री एस.एन.तिलहरी, अपर शासकीय अधिवक्ता की ओर से सुनवाई की।

2. सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 18.12.2025 के आदेश के माध्यम से, अपील की विशेष अनुमति (क्रिल०) संख्या-20664 वर्ष 2025 में पारित किया; सुनील कुमार गुप्ता बनाम भारत संघ और अन्य मामले ने उच्च न्यायालय से आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की विचारणीयता के मुद्दे पर निर्णय लेने का अनुरोध किया है, जिसका आदेश 03.01.2026 को प्राप्त हुआ है।

3. उपरोक्त पर विचार करते हुए, मामले की विस्तार से सुनवाई की गई है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



4. प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका दायर की गई है जिसमें प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (संक्षेप में "अधिनियम, 1980") के तहत अवैध हिरासत से रिहा करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है। इसके अलावा जिला मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा अधिनियम, 1980 के तहत पारित दिनांक 02.07.2024 के हिरासत आदेश और उससे उत्पन्न होने वाली सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द करने के साथ-साथ अवैध हिरासत के लिए उचित मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश देने के लिए प्रार्थना की जाती है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि प्रार्थना खंड में टंकण त्रुटि के कारण, तारीख 02.07.2024 के रूप में इंगित की गई है, बल्कि इसे 02.07.2025 के रूप में पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि निरोध आदेश 02.07.2025 का है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का उपरोक्त बयान दर्ज किया जाता है।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को यह इंगित करने की आवश्यकता थी कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में याचिका अधिनियम, 1980 के तहत पारित हिरासत आदेश के खिलाफ कैसे होगी।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव बनाम अलका सुभाष गादिया (1992) पूरक (1) एस.सी.सी. 496** के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप एवं असंदिग्ध रूप से यह प्रतिपादित किया है कि बंदी अथवा उसकी ओर से कोई भी व्यक्ति, उसके लिए उपलब्ध किसी भी आधार पर, बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के माध्यम से निरोध आदेश को चुनौती देने के लिए सदैव स्वतंत्र है।

9. प्रतिपक्षी संख्या-1 की अधिवक्ता डॉ. पूजा सिंह और प्रतिपक्षी संख्या-2 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री एस.एन.तिलहारी, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के उपरोक्त प्रस्ताव पर विवाद नहीं करते हैं।

10. तदनुसार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में अधिनियम, 1980 के तहत पारित निरोध आदेश को चुनौती देने वाली याचिका सुनवाई योग्य है। हम तदनुसार धारण करते हैं।

11. मोटे तौर पर, निरोध आदेश को याचिकाकर्ता/हिरासत में लेने वाले द्वारा निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई है:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा!



i) हिरासत आदेश को 'कानून और व्यवस्था' की स्थिति को सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति बताकर गलत तरीके से पारित किया गया है।

ii) उपयुक्त सरकार द्वारा हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने में अत्यधिक और अस्पष्टीकृत देरी हुई।

iii) निरोध आदेश याचिकाकर्ता के पहले से ही हिरासत में होने और जमानत की संभावना के आधार पर पारित किया गया था जो स्वयं हिरासत के आदेश को दूषित करता है।

iv) हिरासत में लिए गए व्यक्ति/याचिकाकर्ता के आपराधिक इतिहास को अवैध निरोध आदेश के आधार के रूप में इस्तेमाल किया गया था।

12. आगे की कार्यवाही करने और निरोध आदेश की वैधता की जांच करने से पहले, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है। इस मामले में याचिकाकर्ता को अधिनियम, 1980 की धारा 3 के तहत हिरासत में लिया गया है, जो अधिनियम के तहत हिरासत की शक्ति और प्रक्रिया से संबंधित है। अधिनियम, 1980 की धारा 8 हिरासत में लिए गए व्यक्ति को जल्द से जल्द हिरासत के आधार के बारे में सूचित करने और उपयुक्त सरकार को निरोध आदेश के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करने का अधिकार प्रदान करती है। धारा 9 से 12 सलाहकार बोर्ड से संबंधित है और धारा 13 में प्रावधान है कि अधिनियम, 1980 के तहत हिरासत की अधिकतम अवधि हिरासत की तारीख से 12 महीने की अवधि से अधिक नहीं होगी। धारा 14 में कहा गया है कि हिरासत को रद्द करने की शक्ति राज्य के साथ-साथ केंद्र सरकार के पास है।

13. सुविधा के लिए, अधिनियम, 1980 के प्रासंगिक प्रावधान को इसके साथ पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"3. कतिपय व्यक्तियों को हिरासत में रखने का आदेश देने की शक्ति - (1) केन्द्र सरकार या राज्य सरकार,-

(क) यदि किसी व्यक्ति के संबंध में संतुष्ट हो तो उसे भारत की रक्षा, विदेशी शक्तियों के साथ भारत के संबंधों, या भारत की सुरक्षा के लिए किसी भी प्रकार से प्रतिकूल कार्य करने से रोकने की दृष्टि से, या



(ख) यदि किसी विदेशी के संबंध में इस बात से संतुष्ट हैं कि भारत में उसकी निरंतर उपस्थिति को विनियमित करने की दृष्टि से या भारत से उसके निष्कासन की व्यवस्था करने की दृष्टि से, ऐसा करना आवश्यक है, एक आदेश दें कि ऐसे व्यक्ति को हिरासत में लिया जाए।

(2) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, यदि किसी व्यक्ति के संबंध में संतुष्ट हो जाती है कि उसे राज्य की सुरक्षा के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने या लोक व्यवस्था के बनाए रखने के लिए किसी प्रकार के प्रतिकूल कार्य करने से या समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्तियों और सेवाओं के अनुरक्षण के लिए किसी प्रकार से प्रतिकूल कार्य करने से रोकने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक है, ऐसे व्यक्ति को हिरासत में लेने का निर्देश देते हुए आदेश दें।

स्पष्टीकरण -- इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए, "समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करना" में "समुदाय के लिए आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करना" शामिल नहीं है, जैसा कि कालाबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु आपूर्ति अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (1) के स्पष्टीकरण में परिभाषित किया गया है, (ख) 1980 (7 वर्ष 1980) के तहत किसी भी आधार पर इस अधिनियम के तहत हिरासत का कोई आदेश नहीं दिया जाएगा, जिस पर उस अधिनियम के तहत हिरासत का आदेश दिया जा सकता है।

(3) यदि, जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त के अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी क्षेत्र में प्रचलित या प्रचलित होने की संभावना वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार संतुष्ट हो जाती है कि ऐसा करना आवश्यक है, तो वह लिखित रूप में आदेश द्वारा निदेश दे सकेगी कि ऐसी अवधि के दौरान, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसे जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त, यदि उप-धारा (2) में प्रदान किए गए अनुसार संतुष्ट हो जाते हैं, तो उक्त उप-धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं:

परन्तु इस उपधारा के अधीन राज्य सरकार द्वारा दिए गए आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि, प्रथम दृष्टया तीन माह से अधिक नहीं होगी, परन्तु यदि राज्य सरकार, पूर्वोक्त रूप से संतुष्ट हो जाती है कि ऐसा करना आवश्यक है, तो ऐसी अवधि को समय-समय पर किसी भी समय तीन माह से अनधिक किसी भी अवधि तक बढ़ाने के लिए ऐसे आदेश में संशोधन कर सकेगी।

(4) जब उपधारा (3) में उल्लिखित किसी अधिकारी द्वारा इस धारा के अधीन कोई आदेश दिया जाता है, तो वह तुरन्त उस तथ्य को उस राज्य सरकार को सूचित करेगा जिसके अधीन वह है और साथ ही उन आधारों के साथ जिनके आधार पर आदेश दिया गया है और ऐसे अन्य विवरण, जिनका उसकी राय में, मामले पर प्रभाव पड़ता है,



और ऐसा कोई आदेश उसके गठन के बाद बारह दिनों से अधिक समय तक लागू नहीं रहेगा, जब तक कि इस बीच, इसे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया है:

बशर्ते कि जहां धारा 8 के तहत निरोध के आधार पांच दिनों के बाद आदेश देने वाले अधिकारी द्वारा सूचित किए जाते हैं, लेकिन निरोध की तारीख से पंद्रह दिनों के बाद नहीं, यह उप-धारा इस संशोधन के अधीन लागू होगी कि, "बारह दिन" शब्दों के लिए, शब्द "बीस दिन" प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(5) जब इस धारा के अधीन राज्य सरकार द्वारा कोई आदेश दिया जाता है या अनुमोदित किया जाता है, तो राज्य सरकार, सात दिनों के भीतर, उन आधारों के साथ इस तथ्य को केन्द्र सरकार को सूचित करेगी जिन पर आदेश दिया गया है और ऐसे अन्य विवरण, जो राज्य सरकार की राय में, आदेश की आवश्यकता पर प्रभाव डालते हैं।

.....

8. आदेश से प्रभावित व्यक्तियों को प्रकट किए जाने वाले निरोध के आदेश के आधार - (1) जब किसी व्यक्ति को निरोध आदेश के अनुसरण में हिरासत में लिया जाता है, तो आदेश देने वाला प्राधिकारी, यथाशीघ्र होगा, लेकिन सामान्यतः पांच दिनों के भीतर और असाधारण परिस्थितियों में और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, हिरासत की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर, उसे उन आधारों के बारे में बताएं जिन पर आदेश दिया गया है और उन्हें उपयुक्त सरकार को आदेश के खिलाफ अभ्यावेदन देने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करेगा।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के लिए प्राधिकारी से उन तथ्यों का प्रकटीकरण करने की अपेक्षा नहीं होगी जिन्हें वह जनहित के विरुद्ध समझे।

9. सलाहकार बोर्डों का गठन - (1) केन्द्रीय सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार, जब कभी आवश्यक हो, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक सलाहकार बोर्डों का गठन करेगी।

(2) ऐसे प्रत्येक बोर्ड में तीन व्यक्ति होंगे जो किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए योग्य हैं या रहे हैं या किए जाने के योग्य हैं और ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति समुचित सरकार द्वारा की जाएगी।

(3) समुचित सरकार, सलाहकार बोर्ड के सदस्यों में से किसी एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, को उसका अध्यक्ष नियुक्त करेगी और संघ राज्यक्षेत्र के मामले में, किसी ऐसे व्यक्ति की सलाहकार बोर्ड में नियुक्ति, जो किसी राज्य के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, संबंधित राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से होगी।

10. सलाहकार बोर्डों को संदर्भ - इस अधिनियम में अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित



किए गए के अलावा, प्रत्येक मामले में जहां इस अधिनियम के अधीन निरोध आदेश दिया गया है, समुचित सरकार, आदेश के अधीन किसी व्यक्ति को हिरासत में रखने की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर, धारा 9 के अधीन उसके द्वारा गठित सलाहकार बोर्ड के समक्ष उन आधारों को प्रस्तुत करेगी जिन पर आदेश दिया गया है और अभ्यावेदन, यदि कोई हो, तो आदेश से प्रभावित व्यक्ति द्वारा किया गया है, और मामले में जहां आदेश धारा 3 की उप-धारा (3) में उल्लिखित एक अधिकारी द्वारा किया गया है, उस धारा की उप-धारा (4) के तहत ऐसे अधिकारी द्वारा रिपोर्ट भी।

11. सलाहकार बोर्डों की प्रक्रिया (1) सलाहकार बोर्ड, अपने समक्ष रखी गई सामग्रियों पर विचार करने के बाद और ऐसी और सूचना मांगने के बाद, जो वह उपयुक्त सरकार से या उपयुक्त सरकार के माध्यम से या संबंधित व्यक्ति के माध्यम से इस प्रयोजन के लिए बुलाए गए किसी व्यक्ति से आवश्यक समझे, और यदि, किसी विशेष मामले में, वह ऐसा करना आवश्यक समझता है या यदि संबंधित व्यक्ति सुनवाई की इच्छा रखता है, उसे व्यक्तिगत रूप से सुनने के बाद, संबंधित व्यक्ति को हिरासत में लिए जाने की तारीख से सात सप्ताह के भीतर उपयुक्त सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

(2) सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट उसके एक अलग भाग में सलाहकार बोर्ड की राय को विनिर्दिष्ट करेगी कि संबंधित व्यक्ति को हिरासत में रखने के लिए पर्याप्त कारण है या नहीं।

(3) जब सलाहकार बोर्ड का गठन करने वाले सदस्यों के बीच मतभेद होता है, तो ऐसे सदस्यों के बहुमत की राय बोर्ड की राय मानी जाएगी।

(4) इस धारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को हकदार नहीं बनाएगी जिसके विरुद्ध किसी विधिक व्यवसायी द्वारा सलाहकार बोर्ड के संदर्भ से संबंधित किसी मामले में उपस्थित होने का आदेश दिया गया है; और सलाहकार बोर्ड की कार्यवाही और उसकी रिपोर्ट, रिपोर्ट के उस हिस्से को छोड़कर जिसमें सलाहकार बोर्ड की राय निर्दिष्ट की गई है, गोपनीय होगी।

12. सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट पर कार्यवाई - (1) किसी ऐसे मामले में जहां सलाहकार बोर्ड ने सूचित किया है कि उसकी राय में, किसी व्यक्ति को हिरासत में रखने के लिए पर्याप्त कारण है, समुचित सरकार निरोध आदेश की पुष्टि कर सकती है और संबंधित व्यक्ति को ऐसी अवधि के लिए हिरासत में रख सकती है जो वह ठीक समझे।

(2) किसी ऐसे मामले में जहां सलाहकार बोर्ड ने सूचित किया है कि उसकी राय में, किसी व्यक्ति को हिरासत में रखने का कोई पर्याप्त कारण नहीं है, समुचित सरकार निरोध आदेश को रद्द कर देगी और संबंधित व्यक्ति को तत्काल रिहा कर देगी।

14. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि नजरबंदी किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



लगाती है और इस प्रकार, इस शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए। इस तथ्य के लिए कोई दूसरी राय नहीं हो सकती है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत स्वतंत्रता सबसे पवित्र और पोषित मौलिक अधिकारों में से एक है। इस प्रकार, निवारक निरोध की शक्ति का प्रयोग कुछ हद तक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

15. अधिनियम, 1980 के तहत निवारक निरोध की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति सार्वजनिक व्यवस्था या राज्य की सुरक्षा के प्रति प्रतिकूल तरीके से कार्य करता है या समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं के रखरखाव के लिए प्रतिकूल तरीके से कार्य करता है।

16. राम बली राजभर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1975) 4 एस.सी.सी. 47 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है,

"13. बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर, न्यायालय को इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या हिरासत प्रथम दृष्टया कानूनी है या नहीं, और यह नहीं कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी तथ्य के प्रत्येक प्रश्न पर गलत या सही तरीके से संतुष्ट हुए हैं या नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अदालतों को नागरिक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की उत्साहपूर्वक रक्षा करनी होती है और यह सुनिश्चित करना होता है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के मामले पर उचित और निष्पक्ष रूप से विचार किया जाए और हिरासत में लिए गए अधिकारियों और सलाहकार बोर्ड द्वारा निपटाया जाए। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें निवारक निरोध के कानून द्वारा हिरासत में लेने वाले अधिकारियों और सलाहकार बोर्डों पर लगाए गए कर्तव्यों को सही और उचित रूप से ग्रहण करना होगा या वे तथ्य के प्रश्नों पर अपील की अदालतों के रूप में कार्य कर सकते हैं। निवारक निरोध का कानून, चाहे हम इसे पसंद करें या नहीं, संभवतः हमारे संविधान द्वारा अधिकृत है क्योंकि संविधान निर्माताओं द्वारा यह अनुमान लगाया गया था कि राष्ट्र के जीवन में ऐसे अवसर उत्पन्न हो सकते हैं जब नागरिकों को उन तरीकों से कार्य करने से रोकने की आवश्यकता हो सकती है जो अवैध रूप से एक स्थापित व्यवस्था के आधारों को नष्ट या बाधित करते हैं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दावों से अधिक हो सकते हैं।

17. जबकि निवारक निरोध की योजना को संविधान में मान्यता दी गई है, यह इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि संविधान भी इस असाधारण शक्ति के मनमाने प्रयोग के खिलाफ कई सुरक्षा उपायों को अनिवार्य करता है। सलाहकार बोर्डों के गठन के लिए प्रावधान किए गए हैं जिनमें प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल हैं जो उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश होने के



लिए योग्य हैं और हिरासत के विरुद्ध अभ्यावेदन को दायर की देने का अधिकार भी प्रदान किया गया है।

18. अधिनियम के उद्देश्यों को देखने के बाद, अब हम ऊपर उल्लिखित प्रावधानों के आलोक में याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

'सार्वजनिक व्यवस्था' और 'कानून और व्यवस्था'

19. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को सूचित किए गए हिरासत के आधार सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी के बारे में संकेत देते हैं, जिसे अन्य आधारों के अलावा निरोध आदेश को लागू करने का आधार भी बनाया गया है।

20. इस संबंध में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने हमें दिनांक 02.07.2025 को हिरासत के आधार के माध्यम से ले लिया है, जो इंगित करता है कि 15.06.2025 को एक घटना हुई थी, जिसके अनुसार याचिकाकर्ता अन्य निवासियों की आपत्तियों के बावजूद अन्य लोगों के साथ एक विशेष स्थान पर खुदाई और निर्माण कार्य कर रहा था, जिसके परिणामस्वरूप पांच घर ढह गए और लगभग आधा दर्जन घरों में दरारें आ गईं। मकानों के ढहने से बच्चों सहित तीन लोगों की मौत हो गई और कई लोग घायल हो गए। उक्त घटना के कारण, दुकानदारों ने अपनी दुकानें बंद कर दीं और सड़क जाम कर दी, जिसके परिणामस्वरूप पी.ए.सी., फायर ब्रिगेड, एन.डी.आर.एफ., एस.डी.आर.एफ. और वरिष्ठ पुलिस अधिकारी मौके पर पहुंच गए और भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 105 के तहत अपराध संख्या-248 वर्ष 2025 दर्ज किया गया। 16.06.2025 को फिर से, इलाके के निवासियों ने मृतकों और ढहे हुए घरों के लिए पर्याप्त मुआवजा देने का दावा करते हुए अपनी दुकानें और प्रतिष्ठान बंद कर दिए। यह सामने आया कि खुदाई के लिए कोई अनुमति नहीं दी गई थी। यह भी सामने आया कि निवासियों द्वारा बार-बार विरोध के बावजूद, याचिकाकर्ता और उसके परिचित ने निर्माण और खुदाई का काम किया था, जिसके कारण घरों के ढहने और विभिन्न व्यक्तियों की मृत्यु के कारण समाज में भय पैदा हो गया था। घटनास्थल श्री कृष्ण जन्म भूमि और द्वारकाडी मंदिर के निकट स्थित है, जहां हर दिन हजारों लोग आते हैं और घरों के ढहने की उक्त घटना के कारण, आम जनता में बड़े पैमाने पर भय है और लोगों द्वारा मुआवजे के उद्देश्य से घरों के ढहने और मौत के लिए विरोध प्रदर्शन किया है। मोहल्ले में भारी जाम लगा था और पूरी सार्वजनिक व्यवस्था



बिगाड़ने लगी थी।

21. **अमीना बेगम बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य (2023) 9 एस.सी.सी. 587** के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि "सार्वजनिक व्यवस्था" और "कानून और व्यवस्था" के बीच अंतर है और निरोध आदेश पारित करते समय याचिकाकर्ता के खिलाफ जो घटना लागू की गई है, वह अधिकतम हो सकती है यह "कानून और व्यवस्था" से संबंधित घटना होने के दायरे में आती है, न कि "सार्वजनिक व्यवस्था" से संबंधित और इस प्रकार, प्रतिपक्षियों ने याचिकाकर्ता के कृत्य के आधार पर गलत तरीके से हिरासत का आदेश पारित किया है, जिसके परिणामस्वरूप कथित तौर पर सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी हुई है और उक्त आधार पर, हिरासत के आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

22. दूसरी ओर, **श्री एस.एन.तिलकरी, अपर शासकीय अधिवक्ता ने ललित गुप्ता और अन्य बनाम भारत संघ एमयूएनयू/यूपी/1067/2021** के मामले में इस न्यायालय के खंडपीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें यह तर्क देने के लिए कि "सार्वजनिक व्यवस्था" और "कानून और व्यवस्था" की दो अवधारणाओं के बीच अंतर को इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करने के बाद स्पष्ट रूप से समझाया गया है **अशोक कुमार बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में, MANU/SC/0052/1982 में रिपोर्ट किया गया है** और इस प्रकार तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का कार्य जिसके परिणामस्वरूप हिरासत का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, वास्तव में सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी का कार्य है और परिणामस्वरूप, निरोध आदेश सही ढंग से पारित किया गया है।

23. इसके अलावा, **मो. फैयाज मंसूरी बनाम भारत संघ, 2021 (6) एएलजे 247** में रिपोर्ट किया गया, श्री तिलहरी का तर्क यह है कि हिरासत का आदेश पारित करना सक्षम प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि है और इस प्रकार न्यायालय संबंधित प्राधिकारी के लिए अपनी संतुष्टि को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और यह तय कर सकता है कि निरोध आदेश लागू करने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि उचित थी या नहीं।

24. निरोध आदेश के साथ हिरासत के आधारों के अवलोकन से यह सामने आता है कि सक्षम प्राधिकारी ने 15.06.2025 को घरों के ढहने की घटना के आधार पर निरोध आदेश लागू किया



है, जिसके परिणामस्वरूप तीन व्यक्तियों की मौत हो गई है, विभिन्न घरों में दरारें आ गई हैं और निवासियों ने उक्त घटना के खिलाफ प्रदर्शन और विरोध प्रदर्शन का सहारा लिया है और ढह गए घरों और कुछ व्यक्तियों की मौत के लिए मुआवजे की भी मांग की है। घटनास्थल के निकट, श्री कृष्ण जन्म भूमि और द्वारकाडी मंदिर नामक दो मंदिर स्थित हैं, जहां हर दिन हजारों लोग आते हैं और उक्त घटना और सड़क जाम होने और निवासियों द्वारा प्रदर्शन के कारण, समाज में भय है जिसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी हुई है।

25. अमीना बेगम (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित व्यवस्था दी है:

"36. यह तुच्छ है कि सभी मामलों में कानून का उल्लंघन सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण नहीं बनता है। निर्णयों की एक श्रृंखला में, इस न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में "कानून और व्यवस्था" और "सार्वजनिक व्यवस्था" के बीच अंतर को नोट किया है।

37. हम राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य [राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य, 1965 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 9: (1966) 1 एस.सी.आर. 709] में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जहां "कानून और व्यवस्था" और "सार्वजनिक व्यवस्था" के बीच का अंतर माननीय एम. हिदायतुल्लाह (मुख्य न्यायाधीश के रूप में तत्कालीन था) द्वारा निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया था:

"54. ... सार्वजनिक व्यवस्था अगर गड़बड़ा जाती है, तो सार्वजनिक अव्यवस्था पैदा होनी चाहिए। शांति का हर उल्लंघन सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण नहीं बनता है। जब दो शराबी झगड़ते हैं और लड़ते हैं तो अव्यवस्था होती है लेकिन सार्वजनिक अव्यवस्था नहीं होती है। कानून और व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियों के तहत उनसे निपटा जा सकता है, लेकिन इस आधार पर हिरासत में नहीं लिया जा सकता है कि वे सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ रहे थे। मान लीजिए कि दोनों लड़ाके प्रतिद्वंद्वी समुदायों के थे और उनमें से एक ने सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काने की कोशिश की। समस्या अभी भी कानून और व्यवस्था की है, लेकिन यह सार्वजनिक अव्यवस्था की आशंका को जन्म देती है। अन्य उदाहरणों की कल्पना की जा सकती है। कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है, लेकिन इससे पहले कि इसे सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने के लिए कहा जा सके, इसे समुदाय या बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित करना

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा!



चाहिए। इस प्रकार केवल कानून और व्यवस्था की गड़बड़ी से अव्यवस्था पैदा होती है, यह आवश्यक रूप से भारत के रक्षा अधिनियम के तहत कार्रवाई के लिए पर्याप्त नहीं है, लेकिन सार्वजनिक व्यवस्था को नष्ट करने वाली गड़बड़ी है। ?

55. इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि जिस तरह इस न्यायालय के फैसलों में "सार्वजनिक व्यवस्था" (पहले उद्धृत) को "राज्य की सुरक्षा" को प्रभावित करने वालों की तुलना में कम गंभीरता के विकारों को समझने के लिए कहा गया था, उसी तरह "कानून और व्यवस्था" भी "सार्वजनिक व्यवस्था" को प्रभावित करने वालों की तुलना में कम गंभीरता के विकारों को समझती है। किसी को तीन संकेंद्रित वृत्तों की कल्पना करनी होगी। कानून और व्यवस्था सबसे बड़े सर्कल का प्रतिनिधित्व करती है जिसके भीतर सार्वजनिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाला अगला सर्कल होता है और सबसे छोटा सर्कल राज्य की सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। तब यह देखना आसान है कि कोई अधिनियम कानून और व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है, लेकिन सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित नहीं कर सकता है, जैसे कि एक अधिनियम सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है, लेकिन राज्य की सुरक्षा को नहीं। (बल वर्धित)

38. सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए किसी अधिनियम के लिए, विशिष्ट गतिविधि का व्यापक समुदाय या आम जनता पर प्रभाव पड़ना चाहिए, जिससे भय, घबराहट या असुरक्षा की भावना पैदा हो। सार्वजनिक शांति के लिए सामान्य अशांति का प्रत्येक मामला सार्वजनिक व्यवस्था और पूछे जाने वाले प्रश्न को प्रभावित नहीं करता है, जैसा कि माननीय एम. हिदायतुल्ला, सीजे ने अरुण घोष बनाम अरुण घोष बनाम सीजे में व्यक्त किया है। **पश्चिम बंगाल [अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल का राज्य, (1970) 1 एस.सी.सी. 98: 1970 एस.सी.सी. (क्रिल) 67]**, यह है:

"3. - क्या यह [अपमानजनक कार्य] समुदाय के जीवन की धारा में गड़बड़ी का कारण बनता है ताकि सार्वजनिक व्यवस्था में खलल डाला जा सके या क्या यह केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है जो समाज की शांति को अबाधित छोड़ देता है?"

26. इसके विपरीत, ललित गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले



ने अशोक कुमार (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार करने के बाद निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"(15) "सार्वजनिक व्यवस्था" और "कानून और व्यवस्था" की दो अवधारणाओं के बीच के अंतर को शीर्ष न्यायालय द्वारा **अशोक कुमार बनाम दिल्ली प्रशासन: ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 1143** में स्पष्ट रूप से समझाया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि "सार्वजनिक व्यवस्था" और "कानून और व्यवस्था" के क्षेत्रों के बीच वास्तविक अंतर, ठीक है और कभी-कभी अतिव्यापी है, अधिनियम की प्रकृति या गुणवत्ता में नहीं बल्कि समाज पर इसकी पहुंच की डिग्री और सीमा में निहित है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि यह कार्य अपने आप में अपनी गंभीरता का निर्धारक नहीं है। यह समुदाय के जीवन की समान गति को बाधित करने के लिए अधिनियम की क्षमता है जो इसे "सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण" बनाती है। यदि इसके प्रभाव में उल्लंघन केवल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित है, जो सीधे तौर पर शामिल हैं, जो जनता के व्यापक स्पेक्ट्रम से अलग हैं, तो यह केवल "कानून और व्यवस्था" की समस्या को उठाएगा। यह किसी विशेष कृत्य या हिंसा पैदा करने वाले अव्यवस्था द्वारा फैलाए गए आतंक की लहर की लंबाई, परिमाण और तीव्रता है जो इसे "कानून और व्यवस्था" से संबंधित "सार्वजनिक व्यवस्था" को प्रभावित करने वाले कार्य के रूप में अलग करती है। उस मामले के तथ्यों पर सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जब भी शहर के किसी आवासीय क्षेत्र में गैंगस्टर्स द्वारा सशस्त्र पकड़ बनाई जाती है और व्यक्तियों को चाकू या रिवाल्वर की नोक पर अपने सामान से वंचित कर दिया जाता है, तो वे संगठित अपराध के शिकार हो जाते हैं और ऐसे कृत्यों को हिरासत के आधार में गिना जाता है। स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि एक बंदी की गतिविधियाँ "सार्वजनिक व्यवस्था" की अवधारणा के दायरे में आने वाले एक विस्तृत क्षेत्र को कवर करती हैं।

(16) उपरोक्त प्रभाव के लिए, सर्वोच्च न्यायालय ने **विक्टोरिया फर्नांडिस बनाम लालमल सावमा: ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 687** में टिप्पणियाँ की हैं, जिसमें अशोक कुमार बनाम दिल्ली प्रशासन (उपरोक्त) सहित अपने पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए, यह दोहराया गया था कि जबकि "कानून और व्यवस्था" अभिव्यक्ति का दायरा



व्यापक है, कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है, "सार्वजनिक व्यवस्था" का दायरा संकीर्ण है और सार्वजनिक व्यवस्था केवल ऐसे उल्लंघन से प्रभावित होगी जो बड़े पैमाने पर समुदाय और जनता को प्रभावित करती है।

(17) 'कानून और व्यवस्था' के उल्लंघन और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के रखरखाव में बाधा डालने वाले अधिनियम के बीच का अंतर भी उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम संजय प्रताप गुप्ता @ पप्पू और अन्य: 2004(8) एस.सी.सी.591 में सर्वोच्च न्यायालय के विचार के लिए आया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर प्राधिकरण के व्यापक सर्वेक्षण के बाद इस अंतर को बारीकी से सामने लाया जो इस प्रकार है: -

"12. कानून और व्यवस्था और लोक व्यवस्था के क्षेत्रों के बीच वास्तविक अंतर केवल अधिनियम की प्रकृति या गुणवत्ता में नहीं है, बल्कि समाज पर इसकी पहुंच की डिग्री और सीमा में निहित है। प्रकृति में समान कार्य करता है, लेकिन विभिन्न संदर्भों और परिस्थितियों में प्रतिबद्ध है, अलग-अलग प्रतिक्रियाओं का कारण बन सकता है। एक मामले में यह केवल विशिष्ट व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है, और इसलिए केवल कानून और व्यवस्था की समस्या को छूता है, जबकि दूसरे में यह सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, कार्य अपने आप में अपने स्वयं के गुरुत्वाकर्षण का निर्धारक नहीं है। इसकी गुणवत्ता में यह अन्य समान कृत्यों से भिन्न नहीं हो सकता है, लेकिन इसकी क्षमता में, यानी समाज पर इसके प्रभाव में, यह बहुत भिन्न हो सकता है।

13. दो अवधारणाओं की अच्छी तरह से परिभाषित रूपरेखा है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि चोरी और हमले के आवारा और असंगठित अपराध सार्वजनिक व्यवस्था के मामले नहीं हैं क्योंकि वे सार्वजनिक जीवन के समान प्रवाह को प्रभावित नहीं करते हैं। कानून का उल्लंघन कुछ हद तक अव्यवस्था पैदा करने के लिए बाध्य है, लेकिन कानून के हर उल्लंघन के परिणामस्वरूप सार्वजनिक अव्यवस्था नहीं होती है। कानून और व्यवस्था सबसे बड़े पैमाने का प्रतिनिधित्व करती है जिसके भीतर सार्वजनिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाला अगला चक्र है और सबसे छोटा चक्र राज्य की सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। "कानून और व्यवस्था" "सार्वजनिक व्यवस्था" को प्रभावित करने वालों की तुलना में कम गंभीरता के विकारों को समझती है, जैसे



"सार्वजनिक व्यवस्था" "राज्य की सुरक्षा" को प्रभावित करने वाले विकारों की तुलना में कम गंभीरता के विकारों को समझती है। (देखें कूसो साह बनाम बिहार राज्य 1974 1 एस.सी.सी. 185, हरप्रीत कौर बनाम महाराष्ट्र राज्य 1992 एस.सी.सी. 177, टीके गोपाल उर्फ गोपी बनाम कर्नाटक राज्य 2000 6 एस.सी.सी. 168 और महाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद शमी 168 याकूब 1980 एस.सी. 1158 के मामले में दर्ज किया गया है।

14. यह रुख कि सार्वजनिक व्यवस्था प्रभावित हुई थी, यह मानने के लिए एक एकल कार्य को पर्याप्त नहीं माना जा सकता है, स्पष्ट रूप से सार के बिना है। यह कृत्यों की संख्या-नहीं है जो मायने रखती है। यह देखा जाना चाहिए कि जीवन की समान गति पर अधिनियम का प्रभाव, समाज पर इसकी पहुंच की सीमा और इसके प्रभाव का क्या प्रभाव है।

(18) इस मुद्दे पर संत सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, वाराणसी, 2000 क्रिल एलजे 2230 के मामले में भी विचार किया गया है, जिसमें रिपोर्ट के प्रस्तर-7 में, इस बिंदु से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"7. दो अर्थ 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' जादू के शब्द नहीं हैं, बल्कि वास्तविकता के शब्द हैं जो विशेष आपराधिक कृत्यों के विभिन्न स्थितियों, उद्देश्यों और प्रभाव को अपने दायरे में गले लगाते हैं। वास्तव में, मामलों की एक लंबी श्रृंखला में, इन दो अभिव्यक्तियों की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई है। उन सभी मामलों को हर निर्णय में फिर से संदर्भित करना आवश्यक नहीं है, एक साधारण कारण के लिए कि उन्हें बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या-33888 वर्ष 1999 में इस न्यायालय के पहले के निर्णय में उद्धृत और चर्चा की गई है। उत्तर प्रदेश राज्य और बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या-38159 वर्ष 1999 राजीव वशिष्ठ बनाम 1999 में दिनांक 1-12-1999 का निर्णय। उत्तर प्रदेश राज्य (1999 में रिपोर्ट किया गया सभी क्रिल आर 2777)। संक्षेप में उपरोक्त सभी निर्णयों का सरगम यह है कि 'सार्वजनिक व्यवस्था' और 'कानून और व्यवस्था' के क्षेत्रों के बीच वास्तविक अंतर अधिनियम की प्रकृति और गुणवत्ता में नहीं है, बल्कि समाज पर इसकी पहुंच की डिग्री और सीमा में निहित है। कभी-कभी कानून और व्यवस्था और 'सार्वजनिक व्यवस्था' की



दो अवधारणाओं के बीच का अंतर इतना अच्छा होता है कि यह ओवरलैप हो जाता है। प्रकृति में समान कार्य लेकिन विभिन्न संदर्भों और परिस्थितियों में प्रतिबद्ध अलग-अलग प्रतिक्रियाओं का कारण बन सकते हैं। एक मामले में यह केवल विशिष्ट व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है और इसलिए, 'कानून और व्यवस्था' की समस्या को छू सकता है, जबकि दूसरे में यह 'सार्वजनिक व्यवस्था' को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, कार्य अपने आप में अपने स्वयं के गुरुत्वाकर्षण का निर्धारण नहीं है। यह समुदाय की गति को भी बाधित करने के लिए अधिनियम की क्षमता है जो इसे 'सार्वजनिक व्यवस्था' के रखरखाव के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण बनाती है।

(19) अधिनियम, 1980 की धारा 3 की उप-धारा 2 में प्रकट होने वाली अभिव्यक्ति का दायरा "सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करना" भी मुस्तकमिया जबर्मिया शेख बनाम एमएम मेहता, (1995)3 एस.सी.सी. 237; (1999)5 एस.सी.सी. 613 और हसन खान इब्ने हैदर खान बनाम आरएच मेंडोंका, (2000)3 एस.सी.सी. 511; में सर्वोच्च न्यायालय के विचार के लिए आया था जिसमें शीर्ष न्यायालय ने माना कि कथित गतिविधियों के नतीजे, सीमा और पहुंच इस तरह की होनी चाहिए कि वे संबंधित व्यक्ति से निपटने या समुदाय या समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित करने वाली उसकी विध्वंसक गतिविधियों को रोकने के लिए सामान्य कानून की क्षमता से परे हों। यह अशांति की डिग्री और समाज या किसी इलाके के लोगों के जीवन की समान गति पर इसका प्रभाव है जो यह निर्धारित करता है कि क्या ऐसी गतिविधियों के कारण होने वाली गड़बड़ी केवल "कानून और व्यवस्था" का उल्लंघन है या यह "सार्वजनिक व्यवस्था" का उल्लंघन है। अमानुल्ला खान कुदेतल्ला खान पठान बनाम गुजरात राज्य (उपरोक्त) के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने कहा है कि जबरन बरामदगी, जनता को धमकी देने और व्यापारियों को उनके कार्यस्थल के पास हमला करने से जुड़ी गतिविधियां समाज के जीवन की समान गति को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त थीं और बदले में "सार्वजनिक व्यवस्था" की गड़बड़ी के लिए पर्याप्त थीं, न कि केवल "कानून और व्यवस्था" की गड़बड़ी।

(20) इस प्रश्न से निपटते हुए कि क्या एक अकेला उदाहरण निरोध के आदेश का आधार हो सकता है, सर्वोच्च न्यायालय ने श्रीमती बिमला रानी बनाम भारत संघ:



1989(26) एसीसी 589 एस.सी. में कहा कि प्रश्न यह है कि क्या इस घटना ने 'सार्वजनिक व्यवस्था' को पूर्वाग्रहपूर्ण रूप से प्रभावित किया था। दूसरे शब्दों में, क्या इसने समुदाय के जीवन की गति को प्रभावित किया। **अलीजान मियां बनाम जिला मजिस्ट्रेट धनबाद, 1983(3) एस.सी.आर. 930 ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 1130** में यह माना गया था कि घटना की प्रकृति के आधार पर इस संबंध में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को संतुष्ट करने के लिए एक भी घटना पर्याप्त हो सकती है। इसी तरह का विचार कई अन्य फैसलों में भी व्यक्त किया गया है। **भारत के अटॉर्नी जनरल बनाम अमृतलाल प्रजीवनदास: ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 2179** के मामले में प्रश्न का उत्तर अधिक उचित और पूरी स्पष्टता के साथ दिया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि यह विवाद से परे है कि हिरासत का आदेश एक ही अधिनियम के आधार पर पारित किया जा सकता है। परीक्षण यह है कि क्या अधिनियम ऐसा है जो इस निष्कर्ष को जन्म देता है कि व्यक्ति इसी तरह की पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों में लिप्त रहेगा। यह एक सिद्धांत के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि एक ही कार्य को हिरासत का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क कि चूंकि यह याचिकाकर्ताओं की अकेली घटना है, इसलिए वह सहानुभूति के पात्र हैं, को खारिज कर दिया जाता है। अब कानून, जैसा कि यह है, यह है कि एक अकेली घटना भी 'सार्वजनिक व्यवस्था' की गड़बड़ी को जन्म दे सकती है। यह बहुलता नहीं है बल्कि विभिन्न आपराधिक कृत्यों का नतीजा है। हालांकि 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' की अभिव्यक्ति की व्याख्या के बारे में सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में निरंतरता है, लेकिन मामले पर अनुचित आग्रह कानून किसी भी लाभांश का भुगतान नहीं करने जा रहा है क्योंकि प्रत्येक मामला अपने स्वयं के विशिष्ट तथ्यों के इर्द-गिर्द घूमता है और इसे विभिन्न उपस्थित कारकों के प्रकाश में देखा जाना चाहिए। मामले के साथ चारों तरफ से मामला खोजना मुश्किल है।

(न्यायालय द्वारा बल वर्धित)

27. उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि यद्यपि सभी मामलों में कानून का उल्लंघन सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण नहीं बनता है और कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है, लेकिन इससे पहले कि इसे सार्वजनिक व्यवस्था को



प्रभावित करने के लिए कहा जा सके, इसे बड़े पैमाने पर समुदाय या जनता को प्रभावित करना चाहिए। 15.06.2025 को हुई घटना से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि यह बड़े पैमाने पर जनता है जो प्रभावित हुई है।

28. ललित गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ के फैसले का अवलोकन यह भी इंगित करता है कि जहां अधिनियम की क्षमता समुदाय के जीवन की गति को भी बाधित करने के लिए है, यह "सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण" होगी और यह कि सार्वजनिक व्यवस्था केवल ऐसे उल्लंघन से प्रभावित होगी जो समुदाय या बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित करती है।

29. स्पष्ट रूप से, हिरासत के आधार से संकेत मिलता है कि दुर्भाग्यपूर्ण तारीख यानी 15.06.2025 को याचिकाकर्ता की कार्रवाई के परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यवस्था, यहां तक कि समुदाय के जीवन की गति में भी खलल पड़ा है और इसने बड़े पैमाने पर समुदाय और जनता को प्रभावित किया है। अन्यथा भी, इस न्यायालय की खंडपीठ ने मोहम्मद मो. फैयाज मंसूरी (उपरोक्त) में कहा है कि निवारक हिरासत दंडात्मक नहीं है, बल्कि संशोधात्मक है और किसी व्यक्ति को कुछ वस्तुओं के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण मानी जाने वाली गतिविधियों को करने से रोकने के लिए इसका सहारा लिया जाता है। न्यायालय संबंधित प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए अपनी संतुष्टि को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और यह तय नहीं कर सकता है कि क्या इसकी संतुष्टि उचित थी या क्या मामले की परिस्थितियों में, संबंधित व्यक्ति को हिरासत में लिया जाना चाहिए था या नहीं।

30. सुविधा के लिए, मो. फैयाज मनसूरी (उपरोक्त) को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"(25) संक्षेप में, निवारक निरोध का कानून अमान्य नहीं है क्योंकि यह निवारक निरोध का आदेश देने के लिए कोई वस्तुनिष्ठ मानक निर्धारित नहीं करता है, और मामले को कार्यपालिका की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर छोड़ देता है। इस दृष्टिकोण का कारण यह है कि निवारक निरोध दंडात्मक नहीं है, बल्कि निवारक है और किसी व्यक्ति को कुछ वस्तुओं के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण मानी जाने वाली गतिविधियों को करने से रोकने के लिए इसका सहारा लिया जाता है, जिन्हें निवारक निरोध का कानून निर्धारित करना चाहता है। इस प्रकार, निवारक निरोध संदेह या प्रत्याशा पर आधारित है, न कि सबूत पर।



राज्य की सुरक्षा, या सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव, या आवश्यक सेवाओं और आपूर्ति के लिए जिम्मेदारी कार्यपालिका पर निर्भर करती है और इसलिए, निवारक निरोध का आदेश देने के लिए उसके पास आवश्यक शक्तियां होनी चाहिए। यह कहने के बाद, किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने या न लेने के लिए हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि, न्यायालय द्वारा वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के लिए खुली नहीं है। किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने के प्रशासनिक निर्णय के गुणों की जांच करने के लिए न्यायालय एक उचित मंच नहीं है। न्यायालय संबंधित प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए अपनी संतुष्टि को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और यह तय नहीं कर सकता है कि क्या इसकी संतुष्टि उचित थी, या मामले की परिस्थितियों में, संबंधित व्यक्ति को हिरासत में लिया जाना चाहिए था या नहीं। अक्सर यह कहा और माना जाता है कि अदालतें इस सवाल पर भी विचार नहीं करती हैं कि हिरासत के आधार में उल्लिखित तथ्य सही हैं या गलत। नियम का कारण यह है कि इस पर निर्णय लेने के लिए न्यायालयों द्वारा साक्ष्य लेने पड़ सकते हैं और यह निवारक निरोध के कानून का उद्देश्य नहीं है। यह मामला सलाहकार बोर्ड के अधिकार क्षेत्र में आता है। ऐसा कहते समय, यह न्यायालय हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के निर्णय पर अपील नहीं करता है और हिरासत में लेने के प्राधिकारी पर अपनी राय को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है जब निरोध के आधार सटीक, प्रासंगिक, समीपस्थ और प्रासंगिक हों।

(26) यहां यह उल्लेख करना उचित है कि हमारा संविधान निस्संदेह हमारे गणतंत्र में सभी व्यक्तियों को विभिन्न स्वतंत्रताओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी देता है। हालांकि, सभी को यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस तरह की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता की संवैधानिक गारंटी का दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए ताकि हमारे मुक्त समाज के पैटर्न की नींव को खतरे में डाल दिया जा सके और खतरे में डाल दिया जा सके जिसमें गारंटीकृत लोकतांत्रिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ने और फलने-फूलने के लिए डिज़ाइन किया गया है। समग्र रूप से हमारे बहु-धार्मिक राष्ट्र के व्यापक हित और प्रत्येक व्यक्ति को गारंटीकृत स्वतंत्रता को संरक्षित करने और सुरक्षित करने का कारण व्यक्तियों की पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों पर उचित प्रतिबंधों की मांग करता है जो निस्संदेह बाकी समाज की सही स्वतंत्रता को खतरे में डालते हैं। निवारक

निरोध का मुख्य उद्देश्य राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था और समुदाय की मांग के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं को बनाए रखना, शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक जीवन शैली को बनाए रखने के व्यापक हित में प्रभावी सुरक्षा उपाय है।

31. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, उक्त आधार को गलत समझा गया और खारिज कर दिया गया।

अभ्यावेदन पर निर्णय लेने में कथित देरी के संबंध में

32. एक और तर्क जो याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सेवा में लगाया गया है, वह यह है कि संबंधित अधिकारियों, अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट, मथुरा, राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा उनके प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने में अत्यधिक देरी हुई थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि एक हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सभी तीन अधिकारियों द्वारा समयबद्ध तरीके से अपना प्रतिनिधित्व निर्धारित करने का अधिकार है, जबकि अधिकारियों ने उसके आवेदन को संसाधित करने में 24 दिन का समय लिया, जिससे उसकी स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन हुआ। इसके विपरीत, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने में कोई देरी नहीं हुई और पूरी प्रक्रिया को अधिनियम, 1980 के तहत प्रदान की गई न्यूनतम समय सीमा में तुरंत और कम से कम समय सीमा में पूरा किया गया।

33. प्रतिपक्षियों ने आगे तर्क दिया है कि अधिनियम कहीं भी प्रतिनिधित्व तय करने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं करता है और राज्य के अधिकारियों को दिन-प्रतिदिन की देरी की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, प्रतिपक्षी अधिकारियों ने हर कदम पर याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर अत्यंत तत्परता के साथ निर्णय लिया है।

34. निरोध के आदेश के खिलाफ प्रतिनिधित्व को दायर की देने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 22(5) से ही उपजा है, जिसमें कहा गया है कि हिरासत में लिए जा रहे व्यक्ति को इस तरह की हिरासत के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर दिया जाना चाहिए। यह अधिकार एक मूल्यवान संवैधानिक अधिकार है, जिसका उल्लंघन निश्चित रूप से हिरासत को अवैध बना देगा। इसके अलावा, अधिनियम, 1980 की धारा 8 हिरासत आदेश के खिलाफ अभ्यावेदन देने का 'जल्द से जल्दी' अवसर प्रदान करने के लिए हिरासत में लिए गए व्यक्ति के अधिकार की पुष्टि करती है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



35. जहां तक प्रतिपक्षियों का तर्क है कि चूंकि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने के लिए अधिनियम, 1980 द्वारा कोई निश्चित समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है और इस प्रकार, न्यायालय राज्य को देरी की व्याख्या करने के लिए नहीं बुला सकते हैं, इसलिए हम इस तरह के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। कई घोषणाओं के माध्यम से यह तय किया गया है कि निरोध की शक्ति का संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि यह किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर एक असामान्य प्रतिबंध की प्रकृति में भाग लेता है। प्रतिनिधित्व करने का अधिकार इस शक्ति के मनमाने प्रयोग के खिलाफ एक सुरक्षा है और इस प्रकार, यह सुनिश्चित करना अदालतों का कर्तव्य है कि एक हिरासत में लिए गए व्यक्ति को वास्तविक और प्रभावी तरीके से ऐसा अधिकार प्रदान किया जाए, जिसमें उचित समय सीमा के भीतर प्रतिनिधित्व का निर्णय लेने का अधिकार भी शामिल है।

36. सरबजीत सिंह मोखा बनाम जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर, (2021) 20 एस.सी.सी. 98 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संबंधित सरकार द्वारा हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर शीघ्र विचार करने के महत्व पर जोर देते हुए निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"47. अभ्यावेदन पर अपने निर्णय में विलंब करके, राज्य सरकार ने हिरासत में लिए गए व्यक्ति को उस मूल्यवान अधिकार से वंचित कर दिया जो धारा 8(1) के उपबंधों से उत्पन्न होता है कि अभ्यावेदन पर शीघ्रता से विचार किया जा रहा है। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, हिरासत में लिए गए व्यक्ति को हिरासत के आधार का संचार "जितनी जल्दी हो सके" और हिरासत में लेने के आदेश के खिलाफ उपयुक्त सरकार को प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर उपयुक्त सरकार द्वारा तात्कालिकता की भावना के साथ विचार किया जाए। राज्य सरकार ऐसा करने में विफल रही। सलाहकार बोर्ड को संदर्भित करने से राज्य सरकार के लिए जल्द से जल्द स्वतंत्र रूप से अभ्यावेदन पर कार्रवाई न करने का कोई औचित्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। राज्य सरकार द्वारा अभ्यावेदन के निपटान में और केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार की अस्वीकृति के बारे में सूचित करने में विलंब, हिरासत में लिए गए व्यक्ति को दिए गए प्रक्रियात्मक अधिकारों और गारंटियों के मूल में प्रहार करता है। यह समझना आवश्यक है कि कानून एन.एस.ए. के तहत कार्यपालिका को दी गई व्यापक



शक्तियों को संतुलित करने के लिए इस तरह के प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का प्रावधान करता है। राज्य सरकार इस न्यायालय से यह उम्मीद नहीं कर सकती है कि वह किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने के लिए व्यक्तिपरक संतुष्टि की अपनी शक्तियों को बनाए रखेगी, जबकि हिरासत में लिए गए व्यक्ति की प्रक्रियात्मक गारंटी का उल्लंघन करेगी जो संविधान में निहित निवारक निरोध के कानूनों के लिए मौलिक हैं।

(न्यायालय द्वारा बल वर्धित)

37. अब्दुल्ला कुन्नी और अन्य बनाम भारत संघ (1991) 1 एस.सी.सी. 476 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (5) से उत्पन्न होने वाले हिरासत में लिए गए व्यक्ति के अधिकारों के बारे में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"7. संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (5) के तहत हिरासत में लिए गए व्यक्ति के दो अधिकार हैं: (i) जितनी जल्दी हो सके, उन आधारों के बारे में सूचित किया जाना जिन पर निरोध का आदेश आधारित है, अर्थात्, जिन आधारों के कारण हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि हुई, और (ii) निरोध के आदेश के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

38. हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि यह निर्धारित करने के लिए कोई सख्त सूत्र लागू नहीं किया जा सकता है कि प्रतिनिधित्व तय करने में देरी हुई है या नहीं। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए और देरी, यदि कोई हो, को तर्कसंगतता के आधार पर परखा जाना चाहिए। कानून अभ्यावेदन तय करने के लिए कोई निश्चित समय अवधि निर्धारित कर सकता है या नहीं भी कर सकता है। हालांकि, चूंकि हिरासत की शक्ति एक कठोर और असाधारण प्रकृति की है, इसलिए यह उम्मीद की जाती है कि अधिकारी तेजी से कार्रवाई करेंगे और किसी भी देरी के साथ उचित स्पष्टीकरण दिया जाएगा।

39. एलएमएस उम्मू सलीमा बनाम बीबी गुजराल और अन्य (1981) 3 एस.सी.सी. 317 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने में दिन-प्रतिदिन की देरी की व्याख्या करने के सिद्धांत के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"7. अधिवक्ता का एक और निवेदन यह था कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अभ्यावेदन के निपटान में काफी देरी हुई थी और यह हिरासत को खराब करने के लिए पर्याप्त था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी प्रत्येक दिन की देरी को पर्याप्त रूप से समझाने के लिए बाध्य था और हमारा ध्यान प्रीतम नाथ हून बनाम भारत संघ और अन्य और शंकर राजू शेट्टी बनाम भारत संघ में फैसलों की ओर आकर्षित किया गया जिसमें मामला दर्ज किया गया। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिरासत में लिए गए अभ्यावेदन पर हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा अत्यंत अभियान के साथ विचार किया जाना चाहिए, लेकिन जैसा कि हम में से एक ने फ्रांसिस कोराली मुलिन बनाम डब्ल्यूसी खंब्रा में देखा है। "समय की अनिवार्यता कभी भी पूर्ण या जुनूनी नहीं हो सकती है"। इस न्यायालय द्वारा कभी-कभार की गई टिप्पणियां कि प्रतिनिधित्व से निपटने में प्रत्येक दिन की देरी को पर्याप्त रूप से समझाया जाना चाहिए, उस अभियान पर जोर देने के लिए है जिसके साथ प्रतिनिधित्व पर विचार किया जाना चाहिए और यह नहीं कि यह एक जादुई सूत्र है, जिसके थोड़े से उल्लंघन के परिणामस्वरूप हिरासत में लिए गए व्यक्ति की रिहाई होनी चाहिए। कानून जीवन के तथ्यों से संबंधित है। कानून में, जीवन की तरह, कोई अपरिवर्तनीय निरपेक्ष नहीं हैं। न तो जीवन और न ही कानून को केवल निरंकुश सूत्रों तक सीमित किया जा सकता है। उस प्रकाश में विचार करने पर, क्या यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत मामले में अनुचित देरी हुई थी? अभ्यावेदन 5.2.1981 को भेजा गया था और 13.2.1981 को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के कार्यालय में प्राप्त हुआ था। जाहिर तौर पर यह 5 वीं से 13 वीं तक डाक पारगमन में था। इसे 19.2.1981 को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था और उसी दिन निपटा दिया गया था। हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिलेखों से हम देखते हैं कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी श्री बीबी गुजराल 13 से 16 तारीख तक उपलब्ध नहीं थे क्योंकि वह विदेश गए थे। वह 16 तारीख को लौटे और 19 तारीख को इस मामले पर विचार किया। हिरासत में लिए गए व्यक्ति के अधिवक्ता ने आग्रह किया कि भारत से हिरासत में लिए गए प्राधिकारी की अनुपस्थिति को हिरासत में लिए गए व्यक्ति के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है ताकि उसके प्रतिनिधित्व पर अत्यंत तेजी से विचार किया जा सके। हम इस बात से सहमत हैं कि ऐसे मामलों में हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर विचार करने के लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। स्पष्ट रूप से,



प्रस्तुत मामले में यह आवश्यक नहीं समझा गया था क्योंकि श्री गुजराल 16 तारीख को अर्थात् कुछ ही दिनों के भीतर लौट रहे थे। 16 तारीख के बाद देरी केवल तीन दिनों की अवधि के लिए थी। इसे शायद ही देरी के रूप में वर्णित किया जा सकता है, हालांकि कोई चाहता है कि उस छोटी सी शिकायत के लिए भी कोई जगह न हो। हमारा मानना है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा अभ्यावेदन के निपटान में कोई गैर-जवाबदेह या अनुचित देरी नहीं हुई है। (न्यायालय द्वारा बल वर्धित)

40. असलम अहमद जहीर अहमद शेख बनाम भारत संघ और अन्य, (1989) 3 एस.सी.सी. 277 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं,

"5. यह अदालत एसके अब्दुल करीम और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1969]1 एस.सी.सी. 433(एस.सी.सी. पी. 439, प्रस्तर-8) में अवधारित:

"अनुच्छेद 22 (5) के तहत प्रतिनिधित्व का अधिकार एक मूल्यवान संवैधानिक अधिकार है और यह केवल औपचारिकता नहीं है।

6. इस दृष्टिकोण को रशीद एसके बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [(1973) 3 एस.सी.सी. 476: 1973 एस.सी.सी. (क्रिल) 376] संविधान के अनुच्छेद 22 (5) में दोहराया गया था। जिसमें उल्लिखित सरकार द्वारा याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर शीघ्र विचार करने की संवैधानिक आवश्यकता से निपटने के दौरान इस प्रकार देखा गया: (एस.सी.सी. पी. 478, प्रस्तर-4)

"इस प्रावधान का अंतिम उद्देश्य केवल संबंधित अधिकारियों द्वारा उनके प्रतिनिधित्व पर सबसे तेजी से विचार करना हो सकता है, क्योंकि तात्कालिकता की भावना के साथ इसके त्वरित विचार के बिना प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करने का मूल उद्देश्य विफल होने की संभावना है। प्रतिनिधित्व करने और प्रतिनिधित्व पर जल्द से जल्द विचार करने का यह अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की संवैधानिक गारंटी से प्रवाहित होता है, वह अधिकार जो हमारे गणतंत्र में अत्यधिक पोषित है और मनमाने और गैरकानूनी आक्रमण के खिलाफ इसकी सुरक्षा है।

7. यह न तो संभव है और न ही सभी मामलों के लिए समान रूप से लागू समय की



किसी भी कठोर अवधि को निर्धारित करना उचित है, जिसके भीतर हिरासत में लिए गए के प्रतिनिधित्व को उचित अभियान के साथ निपटाया जाना है, लेकिन यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए। 'उचित अभियान' अभिव्यक्ति को साबिर अहमद बनाम भारत संघ, [(1980) 3 एस.सी.सी. 295: 1980 एस.सी.सी. (क्रिल) 675] में इस प्रकार समझाया गया है:

“उचित अभियान क्या है, यह एक सवाल है जो विशेष मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उचित समय के माप के रूप में कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। लेकिन निश्चित रूप से लापरवाही, कठोर निष्क्रियता, परिहार्य तालफीताशाही और अनावश्यक रूप से लंबे समय तक चलने वाले विलंब के कारण देरी को कवर नहीं करता है।

8. विजय कुमार बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य [(1982)2 एस.सी.सी.43: 1982 एस.सी.सी. (क्रिल)348] और रायसुद्दीन बनाम रायसुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1983)4 एस.सी.सी. 537: 1984 एस.सी.सी. (क्रिल)16] भी देखें:

9. इस प्रकार जब इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा इस बात पर जोर दिया जाता है और फिर से जोर दिया जाता है कि एक प्रतिनिधित्व पर उचित अभियान के साथ विचार किया जाना चाहिए, तो प्रत्येक प्राधिकरण की ओर से यह अनिवार्य है, चाहे वह केवल प्रसारित करने या उससे निपटने में, किसी भी शिकायत के लिए जगह दिए बिना सभी उचित तत्परता और परिश्रम के साथ उस दायित्व का निर्वहन करे, उदासीनता या परिहार्य देरी क्योंकि किसी भी प्राधिकरण की ओर से सुस्ती के कारण होने वाली देरी के परिणामस्वरूप अंततः प्रतिनिधित्व के निपटान में देरी होगी, जो बदले में संविधान के अनुच्छेद 22 (5) के जनादेश का उल्लंघन करने के रूप में हिरासत के आदेश को अमान्य कर सकती है। (न्यायालय द्वारा बल वर्धित)

41. प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता को 02.07.2025 को हिरासत में लिया गया था। अभिलेखों पर मौजूद दलीलों के अवलोकन से यह सामने आता है कि अन्य संबंधित दस्तावेजों के साथ निरोध आदेश को जिला मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा उसी दिन, यानी 02.07.2025 को राज्य सरकार को अग्रेषित किया गया था और जो राज्य सरकार को 03.07.2025 को प्राप्त हुआ था।



इसके बाद, राज्य सरकार ने 11.07.2025 को इसे मंजूरी दे दी और 12.07.2025 को याचिकाकर्ता को निर्णय के बारे में सूचित कर दिया गया। इसके अलावा, हिरासत आदेश की एक प्रति, हिरासत के आधार और अन्य संबंधित दस्तावेज भी वैधानिक समय अवधि के भीतर केंद्र सरकार को भेजे गए थे।

42. अधिनियम की धारा 3(4) के अधिदेश के अनुसार, निरोध आदेश तब तक लागू नहीं रह सकता जब तक कि निरोध आदेश पारित होने की तारीख से 12 दिनों की अवधि के भीतर संबंधित राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है। धारा 3(5) में कहा गया है कि एक बार राज्य सरकार द्वारा हिरासत के आदेश को मंजूरी दे दिए जाने के बाद, हिरासत के आधार के साथ 7 दिनों के भीतर केंद्र सरकार को इसकी सूचना देनी होगी। दिनांक 02.07.2025 के निरोध आदेश को राज्य सरकार द्वारा 12.07.2025 को अनुमोदित किया गया था और इसे केंद्र सरकार को भी भेज दिया गया था। इस प्रकार, धारा 3(4) और 3(5) के जनादेश का प्रस्तुत मामले में अनुपालन किया गया।

43. हिरासत के खिलाफ अभ्यावेदन याचिकाकर्ता द्वारा 07.07.2025 को जेल अधिकारियों, मथुरा को प्रस्तुत किया गया था। जिला कारागार के अधीक्षक ने उसी दिन मथुरा के डीएम को अभ्यावेदन भेज दिया। इसके बाद, 11.07.2025 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया और उसी दिन हिरासत में लिए गए याचिकाकर्ता को निर्णय के बारे में सूचित कर दिया गया। जिला मजिस्ट्रेट ने अपनी टिप्पणियों के साथ अभ्यावेदन को राज्य और केंद्र सरकार को अग्रेषित किया था।

44. राज्य सरकार के संबंधित अनुभाग को दिनांक 07.07.2025 का अभ्यावेदन दिनांक 14.07.2025 को जिला मजिस्ट्रेट के पत्र और टिप्पणियों के साथ दिनांक 11.07.2025 को प्राप्त हुआ था। अभ्यावेदन की प्रति 15.07.2025 को केंद्र सरकार और सलाहकार बोर्ड दोनों को भेजी गई थी। इसके बाद, 16.07.2025 को अवर सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा अभ्यावेदन की जांच की गई और उसी दिन संयुक्त सचिव और बाद में विशेष सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा भी अभ्यावेदन पर विचार किया गया। इसके बाद, 17.07.2025 को सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा अभ्यावेदन की जांच की गई और 18.07.2025 को प्रमुख सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा अभ्यावेदन की जांच की गई। 19.07.2020 और 20.07.2020 को अवकाश था और उसके बाद, अभ्यावेदन उच्च अधिकारियों को भेजा गया था,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



जिन्होंने सभी प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, 23.07.2025 को हिरासत के आदेश को मंजूरी दे दी। उसी दिन, राज्य सरकार के निर्णय से याचिकाकर्ताओं को सूचित कर दिया गया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने में राज्य सरकार द्वारा कुल 16 दिन का समय लिया गया, जिस पर याचिकाकर्ता का भी कोई विवाद नहीं है।

45. केंद्र सरकार की ओर से, दिनांक 07.07.2025 का अभ्यावेदन, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की दिनांक 11.07.2025 की पैरा-वार टिप्पणियों के साथ, केंद्र सरकार के संबंधित मंत्रालय को 14.07.2025 को प्राप्त हुआ और 15.07.2025 को मंत्रालय के संबंधित अनुभाग तक पहुंच गया। इसके बाद, केंद्र सरकार ने राज्य सरकार की रिपोर्ट की प्रति की प्रतीक्षा की, जो राज्य सरकार द्वारा हिरासत पर विचार करने और मंजूरी देने के बाद 22.07.2025 को प्राप्त हुई थी। केन्द्र सरकार अभ्यावेदन पर निर्णय लेने से पहले राज्य सरकार की टिप्पणियों का अवलोकन करना चाहती थी और राज्य सरकार ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद अपनी संतुष्टि व्यक्त की। अधिवक्ता ने यह स्थापित करने के लिए दिनांक 18.07.2025 और 22.07.2025 के कुछ ईमेल संचार भी प्रस्तुत किए कि केंद्र सरकार परिश्रम के साथ काम कर रही है और मामले के अभिलेखों के लिए राज्य सरकार से अनुरोध किया था।

46. इसके बाद, दिनांक 07.07.2025 के अभ्यावेदन के साथ-साथ राज्य सरकार द्वारा भेजी गई रिपोर्ट जिसमें हिरासत के आधार, टिप्पणियां और संबंधित दस्तावेज शामिल हैं, की 23.07.2025 को अनुभाग स्तर पर जांच की गई और 24.07.2025 को अवर सचिव को भेज दी गई। उसी दिन, अवर सचिव ने अपनी टिप्पणियों के साथ इसे उप सचिव को भेज दिया। इसके बाद, इसे 25.07.2025 को संयुक्त सचिव और 26.07.2025 को केंद्रीय गृह सचिव को भेज दिया गया। चूंकि 27.07.2025 को रविवार था, इसलिए केंद्रीय गृह सचिव द्वारा 28.07.2025 को इस पर विचार किया गया और इसे खारिज कर दिया गया और संयुक्त सचिव को वापस भेज दिया गया। फाइल 30.07.2025 को संबंधित अनुभाग में पहुंची और 30.07.2025 को हिरासत में लिए गए याचिकाकर्ता को सूचित कर दी गई। इसलिए, अभ्यावेदन को प्रसारित करने, विचार-विमर्श करने, निर्णय लेने और संप्रेषित करने में कुल 23 दिन का समय लिया गया।

47. इस प्रकार, एक 23 दिनों के भीतर, सभी तीन प्राधिकरण, जिनके बारे में याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि वे हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर शीघ्रता से निर्णय लेने के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



कर्तव्य से बंधे हैं, ने याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व का फैसला किया था। प्रतिपक्षियों ने तर्क दिया है कि संबंधित अधिकारियों द्वारा कम से कम समय के भीतर अभ्यावेदन का फैसला किया गया था। तथापि, हम यह उल्लेख करना उचित समझते हैं कि केवल अवधि या दिनों की संख्या पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि यह निर्धारित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए कि क्या संबंधित प्राधिकारी की ओर से कोई उदासीनता, सुस्ती या उदासीन रवैया थी। इसके अलावा, देरी अपने आप में घातक नहीं है और यह केवल वहीं है जहां देरी अस्पष्टीकृत है या अधिकारियों की ओर से एक कठोर और उदासीन दृष्टिकोण को दर्शाती है कि प्रतिकूल दृष्टिकोण लिया जा सकता है।

48. उपर्युक्त के अवलोकन से, राज्य सरकार या केंद्र सरकार की ओर से जानबूझकर या घातक देरी को प्रदर्शित करने के लिए अभिलेखों में कुछ भी नहीं है।

49. दिनांक 02.07.2025 के निरोध आदेश ने याचिकाकर्ता को सूचित किया था कि उसे जिला मजिस्ट्रेट, राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार के समक्ष हिरासत आदेश के खिलाफ एक अभ्यावेदन पसंद करने का अधिकार है। हिरासत आदेश में यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि यदि राज्य सरकार द्वारा हिरासत आदेश की पुष्टि के बाद या हिरासत की पुष्टि के लिए वैधानिक रूप से अनिवार्य अवधि वर्ष 12 दिनों के बाद अभ्यावेदन को दायर की दी जाती है, तो जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई प्रतिनिधित्व नहीं होगा और केवल राज्य सरकार या केंद्र सरकार को प्रतिनिधित्व तय करने का अधिकार होगा। हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड द्वारा सुनवाई के अधिकार के बारे में भी सूचित किया गया था। इसके बाद, चूंकि राज्य सरकार द्वारा हिरासत की पुष्टि करने से पहले दिनांक 07.07.2025 के अभ्यावेदन को दायर की गई थी, इस प्रकार, जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 11.07.2025 के अपने आदेश के माध्यम से यही निर्णय लिया और याचिकाकर्ता के साथ-साथ राज्य और केंद्र सरकार को अपने निर्णय से अवगत कराया।

50. सलाहकार बोर्ड ने दिनांक 05.08.2025 के अपने पत्र के माध्यम से राज्य सरकार को सूचित किया था कि याचिकाकर्ता का मामला 08.08.2025 को सुनवाई के लिए निर्धारित किया गया था और याचिकाकर्ता अपने अगले दोस्त के साथ सुनवाई में भाग लेने के लिए स्वतंत्र था, और यह 05.08.2025 को जिला अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था। याचिकाकर्ता 08.08.2025 को सलाहकार बोर्ड के समक्ष पेश हुआ और याचिकाकर्ता को



सुनने के बाद, सलाहकार बोर्ड ने याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने के लिए पर्याप्त कारण की उपस्थिति की पुष्टि करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की और उक्त रिपोर्ट को दिनांक 12.08.2025 के पत्र के माध्यम से राज्य सरकार को सूचित किया गया। सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट 13.08.2025 को राज्य सरकार के संबंधित अनुभाग तक पहुंची और 18.08.2025 को राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 12 के तहत हिरासत की तारीख से 12 महीने की अवधि के लिए याचिकाकर्ता को हिरासत में रखने की पुष्टि की और 19.08.2025 को याचिकाकर्ता को इसकी सूचना दी गई।

51. राज्य सरकार ने अपनी ओर से अभ्यावेदन तय करने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और प्रत्येक संबंधित अधिकारी द्वारा लिए गए समय की व्याख्या की है। राज्य सरकार ने 12.07.2025 को 02.07.2025 के निरोध आदेश की पुष्टि की और उसके बाद, दिनांक 11.07.2025 को जिला मजिस्ट्रेट की टिप्पणियों सहित अभिलेखों पर मौजूद सभी सामग्री पर विचार करने के बाद 23.07.2025 को हिरासत में लिए गए याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लिया। केंद्र सरकार ने अपनी ओर से जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ राज्य सरकार की हिरासत के आदेश, आधारों, टिप्पणियों पर विचार करने के बाद 30.07.2025 को अभ्यावेदन का निर्णय लिया। केन्द्र सरकार ने प्रत्येक संबंधित अधिकारी द्वारा लिए गए समय के बारे में ब्यौरा प्रस्तुत किया है और यह स्थापित करने के लिए ई-मेल और अन्य पत्रों के अभिलेखों भी प्रस्तुत किए हैं कि हालांकि राज्य सरकार से टिप्पणियां प्राप्त करने में कुछ समय व्यतीत किया गया था, लेकिन इसे केन्द्र सरकार की ओर से सुस्ती, उदासीनता का संकेत नहीं कहा जा सकता है क्योंकि वह इस मामले को तत्परता से देख रही थी और अनुरोध किया था अभ्यावेदन प्राप्त करने के तुरंत बाद टिप्पणियां।

52. **कमरुन्निसा आदि बनाम भारत संघ और अन्य, 1991 (1) एस.सी.सी. 128** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित करते हुए कि प्रायोजक प्राधिकारी के मत अथवा टिप्पणियाँ प्राप्त करने में संबंधित प्राधिकारियों द्वारा लिया गया समय निरर्थक अथवा व्यर्थ नहीं कहा जा सकता, निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किए—

"7. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किए गए तर्कों सहित कई तर्क उठाए। सबसे पहले यह तर्क दिया गया था कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति ने 18 दिसंबर, 1989 को अभ्यावेदन दिए थे, जिन्हें अत्यधिक देरी के बाद 30



जनवरी, 1990 के संचार द्वारा खारिज कर दिया गया था। दिनांक 18 दिसम्बर, 1989 के अभ्यावेदन 20 दिसम्बर, 1989 को जेल प्राधिकारियों को सौंपे गए थे। जेल अधिकारियों ने उन्हें पंजीकृत डाक द्वारा भेजा। 23, 24 और 25 दिसंबर, 1989 गैर-कार्य दिवस थे। कोफेपोसा इकाई को 28 दिसम्बर, 1989 को अभ्यावेदन प्राप्त हुए थे। अगले ही दिन अर्थात् 29 दिसम्बर, 1989 को उन्हें टिप्पणियों के लिए प्रायोजक प्राधिकारी को भेज दिया गया। 30 और 31 दिसंबर, 1989 गैर-कार्य दिवस थे। इसी प्रकार 6 और 7 जनवरी, 1990 को कार्य दिवस नहीं थे। प्रायोजक प्राधिकारी की टिप्पणियां 9 जनवरी, 1990 को कोफेपोसा इकाई को भेज दी गई थीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रायोजक प्राधिकारी को 1 जनवरी, 1990 से पहले अभ्यावेदन प्राप्त नहीं हो सकते थे। 1 जनवरी, 1990 और 8 जनवरी, 1990 के बीच 6 और 7 जनवरी, 1990 के बीच दो गैर-कार्य दिवस थे और इसलिए, यह कहा जा सकता है कि प्रायोजक प्राधिकारी ने अपने पास उपलब्ध चार या पांच दिनों के भीतर टिप्पणियां प्रस्तुत की थीं। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रायोजक प्राधिकरण अत्यधिक देरी का दोषी था। यह तर्क कि प्रायोजक प्राधिकरण के विचार पूरी तरह से अनावश्यक थे और उस प्राधिकरण द्वारा लिया गया समय बचाया जा सकता था, हमें अपील नहीं करता है क्योंकि प्रस्ताव शुरू करने वाले प्राधिकरण से परामर्श करना कभी भी अनुचित अभ्यास नहीं कहा जा सकता है। कोफेपोसा इकाई को प्रायोजक प्राधिकारी की टिप्पणियां प्राप्त होने के बाद इसने अभ्यावेदनों से निपटा और 16 जनवरी, 1990 को उन्हें अस्वीकार कर दिया। टिप्पणियां 9 जनवरी, 1990 को भेजी गई थीं और 11 जनवरी, 1990 को कोफेपोसा यूनिट द्वारा प्राप्त की गई थीं। फाइल 12 तारीख को वित्त मंत्री को तुरंत प्रस्तुत की गई; 13 और 14 तारीख को गैर-कार्य दिवस होने के कारण, उन्होंने 16 जनवरी, 1990 को अभ्यावेदनों को अस्वीकार करने का निर्णय लिया। फाइल 17 जनवरी, 1990 को कोफेपोसा यूनिट में वापस प्राप्त हुई थी और 18 जनवरी, 1990 को डाक द्वारा अस्वीकृति का ज्ञापन भेजा गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति द्वारा संचार प्राप्त करने में डाक विलंब हुआ था, लेकिन इसके लिए हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए, काउंटर में दिए गए स्पष्टीकरण से यह स्पष्ट है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की ओर से हिरासत में लिए गए लोगों के अभ्यावेदन से निपटने में कोई देरी नहीं हुई थी। इस संबंध में न्याय



निर्णयज विधि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था, लेकिन हम इसे संदर्भित करना आवश्यक नहीं समझते हैं क्योंकि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में देरी के प्रश्न का उत्तर दिया जाना है। देरी, यदि कोई हो, को ठीक से समझाया गया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और प्रस्तुत मामले में हम संतुष्ट हैं कि कोई देरी नहीं हुई जैसा कि ऊपर बताए गए तथ्यों से स्पष्ट है। इसलिए, हमें इस दलील में कोई दम नहीं दिखता।

53. इस विचार की कि प्रायोजक प्राधिकारी के विचारों को आमंत्रित करने को निर्णय लेने वाले प्राधिकारी की ओर से जानबूझकर देरी नहीं कहा जा सकता है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम युमनाम आनंद (2007) 10 एस.सी.सी. 190 में पुष्टि की गई है। इसी प्रकार, भारत संघ बनाम लैशराम लिंकला (2008) 5 एस.सी.सी. 490 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि राज्य सरकार की टिप्पणियां प्राप्त करने में केंद्र सरकार द्वारा लिए गए समय से संबंधित स्पष्टीकरण पर यह निर्धारित करते समय विचार किया जाना चाहिए कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने में देरी घातक थी या नहीं।

54. निश्चित रूप से, उस समयरेखा को निर्धारित करने के लिए कोई कठोर नियम मौजूद नहीं है जिसके भीतर प्रतिनिधित्व संबंधित प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए और इसे प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना है। प्रतिपक्षी अधिकारियों द्वारा दायर हलफनामे हिरासत में लिए गए याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व से निपटने में उनके आचरण को प्रदर्शित करते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने उदासीनता के साथ काम किया। याचिकाकर्ता को सलाहकार बोर्ड के समक्ष अपना मामला पेश करने का अवसर भी प्रदान किया गया था, जिसका उन्होंने विधिवत प्रयोग किया। इस प्रकार, अभ्यावेदन पर निर्णय लेने में देरी से संबंधित तर्क को खारिज कर दिया जाता है।

पहले से ही हिरासत में रखे गए व्यक्ति के हिरासत में होने और जमानत मिलने की

आशंका के संबंध में

55. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक और तर्क यह है कि चूंकि निरोध आदेश पारित होने के समय याचिकाकर्ता पहले से ही जेल में था, इसलिए हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के लिए दिनांक 02.07.2025 को निरोध आदेश पारित करने का कोई अवसर नहीं



था। दूसरी ओर, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने इस आशय की संतुष्टि दर्ज की थी कि याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा होने पर सार्वजनिक व्यवस्था के प्रति पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों में शामिल होने की संभावना है, जैसा कि उसके पिछले आचरण से स्पष्ट है, और इस प्रकार, अधिकारियों ने हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था और सामाजिक शांति को भंग करने से रोकने के लिए दिनांक 02.07.2025 को हिरासत आदेश पारित किया।

56. इस संबंध में दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद, यहां यह उल्लेख करना उचित है कि इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता और अन्य लोगों द्वारा किए गए अनधिकृत निर्माण और खुदाई गतिविधियों के कारण टीला ढह गया था। नतीजतन, दुकानदारों ने अपनी दुकानें बंद कर दीं और स्थानीय निवासियों ने इस तरह के अवैध कृत्यों का विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप बच्चों सहित तीन लोगों की मौत हो गई और कई घर ढह गए। इस घटना को समाचार चैनलों पर भी प्रसारित किया गया और समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया। इसके बाद, भारतीय न्याय संहिता, 2023 (बी.एन.एस., 2023) की धारा 105 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई और याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया। याचिकाकर्ता द्वारा हिरासत में लिए गए व्यक्ति द्वारा 30.06.2025 को जमानत याचिका दायर की गई थी और हिरासत का आदेश 02.07.2025 को पारित किया गया था।

57. अब हमारे विचार के लिए जो सवाल उठता है वह यह है कि क्या एक अभियुक्त जो पहले से ही जेल में है और जमानत पर उसकी रिहाई की प्रत्याशा में और उसे सार्वजनिक व्यवस्था के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण कार्य करने से रोकने के उद्देश्य से के खिलाफ हिरासत का आदेश पारित किया जा सकता है। हम उत्तर को सकारात्मक में पाते हैं। इसके कारण अधिनियम, 1980 की धारा 3 के स्पष्ट पढ़ने से स्पष्ट हैं, जिसमें कहा गया है कि सरकार आरोपी व्यक्तियों को सार्वजनिक व्यवस्था के प्रतिकूल कार्य करने से रोकने के उद्देश्य से निवारक हिरासत का आदेश पारित कर सकती है। इस प्रकार, जहां हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की राय है कि जेल में बंद व्यक्ति को रिहा किए जाने की संभावना है और रिहा होने पर, ऐसे व्यक्ति के सार्वजनिक व्यवस्था के प्रतिकूल कृत्यों में लिप्त होने की उचित आशंका है, तो हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी अधिनियम, 1980 की धारा 3 के तहत निरोध आदेश पारित कर सकता है।

58. इसलिए, जहां हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की राय है कि किसी विशेष मामले की

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



परिस्थितियों में अभियुक्त की जेल में उपस्थिति के बावजूद निरोध आदेश पारित करने की आवश्यकता होती है, तो ऐसी स्थिति में, हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी, ऐसी बाध्यकारी परिस्थितियों के लिए अपने कारणों और संतुष्टि को दर्ज करते हुए, निरोध आदेश पारित कर सकता है।

59. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कमरुन्निसा (उपरोक्त)** के मामले में, इस मुद्दे से निपटने के दौरान कि क्या एक व्यक्ति जो पहले से ही जेल में है, उसे जमानत पर रिहा होने की संभावना के आधार पर निवारक निरोध कानून के तहत हिरासत में लिया जा सकता है, ने उसी मुद्दे से संबंधित निर्णयों के एक कैटना का हवाला देने के बाद निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

60. दिनांक 02.07.2025 के निरोध आदेश के अवलोकन से, "13. ऊपर उल्लिखित निर्णयों के कैटना से हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिरासत में किसी व्यक्ति के मामले में भी, एक निरोध आदेश वैध रूप से पारित किया जा सकता है: (1) यदि आदेश पारित करने वाले प्राधिकरण को इस तथ्य से अवगत है कि वह वास्तव में हिरासत में है; (2) यदि उसके पास अपने सामने रखी गई विश्वसनीय सामग्री के आधार पर विश्वास करने का कारण है (ए) कि उसके जमानत पर रिहा होने की वास्तविक संभावना है, और (बी) कि इस तरह रिहा होने पर वह सभी संभावना में पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधि में लिप्त होगा और (3) यदि उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उसे हिरासत में लेना आवश्यक समझा जाता है। यदि प्राधिकरण इस संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करने के बाद एक आदेश पारित करता है, तो इस तरह के आदेश को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि प्राधिकरण के लिए उचित तरीका जमानत का विरोध करना था और यदि इस तरह के विरोध के बावजूद जमानत दी जाती है, तो उच्च न्यायालय के समक्ष इस पर सवाल उठाना था। रमेश यादव (उपरोक्त) के मामले में इस अदालत ने जो कहा वह यह था कि आमतौर पर एक निरोध आदेश केवल उन मामलों में जमानत पर वृद्धि को रोकने या रोकने के लिए पारित नहीं किया जाना चाहिए जो अनिवार्य रूप से आपराधिक प्रकृति के हैं और सामान्य कानून के तहत निपटा जा सकता है। हमें लगता है कि यह अच्छी तरह से तय है कि ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति हिरासत में है, यदि मामले के तथ्य और परिस्थितियां ऐसी मांग करती हैं। निवारक निरोध के कानून का सहारा लिया जा सकता है। यह ऊपर चर्चा किए गए न्याय निर्णयज विधि से काफी स्पष्ट



प्रतीत होता है और उच्च न्यायालय के फैसलों को संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जिस पर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था क्योंकि वे अन्यथा नहीं हैं। इसलिए, हम। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल है कि हिरासत के आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए कोई वैध और बाध्यकारी कारण नहीं था क्योंकि हिरासत में थे। (न्यायालय द्वारा बल वर्धित)

यह स्पष्ट है कि हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी याचिकाकर्ता हिरासत में लिए गए व्यक्ति के लंबित जमानत आवेदन के प्रति सचेत था। याचिकाकर्ता द्वारा 30.06.2025 को जमानत याचिका दायर किए जाने के बाद, गोविंद नगर थाना, जिला मथुरा के थानाध्यक्ष ने अधिनियम की धारा 3 के तहत याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने के लिए जिला मजिस्ट्रेट से अनुरोध करने के लिए वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को एक अभ्यावेदन दिया और उसके बाद, 02.07.2025 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा हिरासत का आदेश पारित किया गया।

61. इसके अलावा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा इस बात पर भी विवाद नहीं है कि दिनांक 30.06.2025 की जमानत याचिका दिनांक 02.07.2025 के निरोध आदेश पारित होने के बाद ही वापस ले ली गई थी। हिरासत के आदेश में आगे कहा गया है कि प्रभावित क्षेत्र के लोग आशंकित थे कि याचिकाकर्ता, जमानत पर रिहा होने पर, अपनी अवैध विध्वंस गतिविधियों को जारी रखेगा। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के आपराधिक इतिहास पर भी भरोसा किया गया था। इस प्रकार, हम इस आधार को प्रस्तुत मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि में गुणों की कमी पाते हैं।

आपराधिक इतिहास से संबंधित कथित बाहरी आधारों के संबंध में

62. याचिकाकर्ताओं का अंतिम तर्क यह है कि दिनांक 02.07.2025 को हिरासत आदेश पारित करते समय डेटेन्यू के आपराधिक इतिहास जैसे बाहरी आधारों को ध्यान में रखा गया था। इसके विपरीत, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति का पिछला आपराधिक इतिहास व्यक्तिपरक संतुष्टि तक पहुंचने के लिए एक वैध आधार है। प्रतिपक्षियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया है कि हिरासत आदेश में सभी प्रासंगिक आधार निर्दिष्ट किए गए थे और अदालत को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के स्थान पर अपनी संतुष्टि को प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता नहीं है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



63. अधिनियम, 1980 के तहत निरोध का आदेश पारित करते समय, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को इस आशय की संतुष्टि दर्ज करनी होगी कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था या धारा 3 में निर्दिष्ट किसी भी अन्य आधार के प्रति किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने से रोकने के लिए आवश्यक है। इस तरह की व्यक्तिपरक संतुष्टि तक पहुंचने में हिरासत में लिए गए के पिछले आचरण या आपराधिक पृष्ठभूमि पर विचार किया जा सकता है।

64. याचिकाकर्ता के खिलाफ वर्ष 2018, 2019, 2020 और 2024 में हत्या, आपराधिक धमकी और बच्चों के खिलाफ यौन अपराधों जैसे गंभीर अपराधों से संबंधित प्राथमिकी दर्ज की गई थी। 16.06.2025 को याचिकाकर्ता के खिलाफ बी.एन.एस., 2023 की धारा 105 के तहत एक और प्राथमिकी दर्ज की गई थी। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा इन तथ्यों को इस व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पहुंचते समय ध्यान में रखा गया था कि याचिकाकर्ता को सार्वजनिक शांति और सामाजिक सद्भाव के लिए हानिकारक गतिविधियों में शामिल होने से रोकने के लिए हिरासत की आवश्यकता थी। इसके अलावा, हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी इस तथ्य से भी अवगत था कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए किसी भी मामले में आरोपपत्र दायर नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह और शिकायतकर्ता याचिकाकर्ता के डर से उसके खिलाफ आरोप का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आए। याचिकाकर्ता के आपराधिक इतिहास से संबंधित तथ्य, जो हिरासत आदेश में पाए गए हैं, यह आकलन करते समय एक महत्वपूर्ण कारक है कि क्या कोई व्यक्ति जमानत पर रिहा होने के बाद समाज में सकारात्मक योगदान देगा या वह सार्वजनिक व्यवस्था के लिए हानिकारक गतिविधियों में शामिल होकर समाज की गति को प्रभावित करेगा। इस प्रकार, निरोध आदेश को केवल इसलिए रद्द नहीं किया जा सकता है क्योंकि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने हिरासत में लिए गए व्यक्ति के खिलाफ दर्ज पिछले आपराधिक मामलों को ध्यान में रखा है। इसलिए, इस आधार के संबंध में याचिकाकर्ता की दलीलों में कोई सार नहीं है।

65. न्यायालय को निरोध प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि में तल्लीन करने की आवश्यकता नहीं है और केवल यह विचार करना है कि क्या प्रासंगिक और ठोस परिस्थितियों और आधारों पर हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था। दिनांक 02.07.2025 के निरोध आदेश में स्पष्ट रूप से उन आधारों को निर्दिष्ट किया गया था जिनके आधार पर



याचिकाकर्ता को हिरासत में लिया गया था। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने हिरासत में लिए गए व्यक्ति की अवैध और अनधिकृत खुदाई गतिविधियों पर विचार किया था, जिसके परिणामस्वरूप भीड़-भाड़ वाले क्षेत्र में कई घरों को ध्वस्त कर दिया गया था, जिसमें बच्चों सहित 3 लोगों की जान चली गई थी। याचिकाकर्ता के अनधिकृत अभियान के कारण कई घर प्रभावित हुए थे। जाहिर है, लोगों को अपने घरों को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा और जिन लोगों ने रहने का फैसला किया, उन्हें अपने घरों पर ट्रैक्टर और भारी मशीनरी को बंद होते हुए देखना पड़ा। हिरासत में लेने वाले अधिकारी ने आम जनता के डर, आशंका और घबराहट पर भी विचार किया है।

66. याचिकाकर्ता को दिनांक 02.07.2025 का निरोध आदेश पारित करते समय प्राधिकरण द्वारा विचार किए गए आधारों का विस्तृत विवरण प्रदान किया गया था। उन्हें संबंधित अधिकारियों के समक्ष प्रतिनिधित्व को दायर की देने के उनके अधिकार और सलाहकार बोर्ड के समक्ष पेश होने के अधिकार के बारे में भी सूचित किया गया था। इस प्रकार, हमें दिनांक 02.07.2025 के निरोध आदेश में कोई कमजोरी नहीं मिलती है (रिट याचिका के प्रार्थना खंड में 02.07.2024 के रूप में गलत तरीके से इंगित किया गया है।

67. तदनुसार, प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका **खारिज** की जाती है ।

68. प्रकरण का निस्तारण करने से पूर्व, हम यह भी अभिलिखित करना उचित समझते हैं कि निर्णय का प्रवर्तनीय भाग, जिसमें पोषणीयता का प्रश्न भी सम्मिलित था, खुली न्यायालय में उच्चारित कर दिया गया था। तथापि, अभिलेख पर उपलब्ध विस्तृत अभिवचनों का अवलोकन किया जाना तथा प्रतिद्वन्द्वी पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा 28.01.2026 से 30.01.2026 तक तथा तत्पश्चात 02.02.2026 को (क्योंकि 31.01.2026 एवं 01.02.2026 अवकाश के दिन थे) प्रस्तुत विस्तृत तर्कों पर विचार किया जाना अपेक्षित था। परिणामस्वरूप, निर्णय स्वयं अत्यधिक विस्तृत हो गया, जिसके कारण उसे उच्चारित कर अपलोड करने में कुछ समय लगा। इसके अतिरिक्त, हममें से एक माननीय न्यायाधीश चार दिनों तक मुख्यालय में उपलब्ध न होने के कारण भी कुछ विलम्ब हुआ।

दिनांक: 02.02.2026 / पछेरे / रीना

(न्यायमूर्ति बबीता रानी)

(न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन)